IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

"विवाह :एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

"MARRIAGE: A HISTORICAL SURVEY"

Dr.Priyanka sahu
Assistant professor history
Government mahakoshal arts
and commerce college jabalpur
Madhya Pradesh india

एब्स्ट्रेक्ट

पश्चात संस्कृतियों में विवाह को जहां एक संविदा माना जाता है ,वही हिंदू संस्कृति में यह कभी न समाप्त होने वाली संस्था है इसका आदर्श मात्र यौन सुख प्राप्त करने ,से कहीं बढ़कर हैं। सनातनी प्रकृति वाले विवाह का उद्देश्य पति और पत्नी के सहयोग से विभिन्न पुरुषार्थों की पूर्ति रहा है। धर्म, प्रजा (संतान)और रति तीनों ही उद्देश्य के पूर्ति का आधार विवाह है शास्त्रीय धर्म के साथ-साथ लौकिक धर्म की पूर्ति हेतु भी विवाह अनिवार्य है।गृहस्थ धर्म के पालन करने तथा ऋणों से उऋण होने के लिए भी पत्नी अत्याज्य है।गृहस्थ जीवन के निर्माण हेतु विवाह संबंध पारस्परिक आकर्षण व प्रेम से निर्मित एक स्थायी आधार प्रदान करता है।परंतु वर्तमान समय में जब विवाह अपनी मर्यादा खोता जा रहा है अतः इस समय विवाह के वास्तविक उद्देश्य, उसके आदर्श का परिचय युवाओं से कराना नितांत आवश्यक है ।इस हेतु विवाह का ऐतिहासिक सर्वेक्षण अत्यंत आवश्यक है जिससे उसके आदर्श स्वरूप की स्थापना वर्तमान समय में भी की जा सके। इस लेख को प्रासंगिक बनाने हेतु विवाह संस्था का ऐतिहासिक सर्वेक्षण करते हुए उसका परिचय, उद्देश्य, विकास, विविध कालों में विवाह संस्था की स्थिति, धार्मिक स्वरूप का परिचय कराया गया।

While in western cultures marriage is considered a contract, in Hindu culture it is a never-ending institution. Its ideal is much more than just achieving sexual pleasure. The objective of marriage of Sanatani nature has been the fulfillment of various purusharthas with the cooperation of husband and wife. Marriage is the basis for the fulfillment of all the three objectives of Dharma, Praja (progeny) and Rati. Along with classical religion, marriage is also essential for the fulfillment of worldly religion. Wife is not to be given up for following Grihastha Dharma and for getting rid of debts. For building a family life, marriage relation provides a permanent base built of mutual attraction and love. But in the present time when marriage is losing its dignity, it is very important to introduce the youth to the real

objective of marriage, its ideal. For this, a historical survey of marriage is very important so that its ideal form can be established in the present time as well. To make this article relevant, while doing a historical survey of the institution of marriage, its introduction, objective, development, status of the institution of marriage in different periods, religious form were introduced.

कीवर्ड

शतपथ ब्राह्मण,गृहस्थ,वहतु ,जायेदत्तम्,आर्ष ,जाया,गर्भाधान ,ऐतरेय ब्राह्मण ,वासवदत्ता,सती प्रथा, नियोग प्रथा

परिचय

"विवाह" प्राचीन हिंदू समाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार है जिस की महत्ता आज भी विद्यमान हैमनु ने स्वीकार किया है कि " जैसे सभी जन्तु वायु के सहारे जीते है , वैसे ही सभी प्राणी गृहस्थ आश्रम से जीवन धारण करते हैं ; जैसे सभी नदियां समुद्र में जाकर स्थिर हो जाती है , वैसे ही तीनों आश्रम गृहस्थ से ही स्थिरता प्राप्त करते है ; उसी की सहायता से जीवित है । " हिन्दू विवाह इसी गृहस्थाश्रम में प्रवेश पाने का साधन है। विवाह की प्रकृति सनातन है।"विवाह" शब्द में" वि" उपसर्ग पूर्वक "वह" धातु से बनता है।जिसका शाब्दिक अर्थ है वधु को वर के घर ले जाना या पहुंचाना। किंतु अति प्राचीन काल से यह शब्द संपूर्ण संस्कार को दर्शाता है।विवाह का उद्देश्य पति और पत्नी के सहयोग से विभिन्न पुरुषार्थों को पूरा करना था।इसे एक यज्ञ माना गया जिसे न करने वाला यज्ञ रहित होता था।हिंदू धारणा में अकेले व्यक्ति का जीवन एकांगी है तथा वह पूर्ण तभी होता है जब पत्नी का सहयोग उसे प्राप्त हो जाए।जब समाज में तीन ऋणों का सिद्धांत लोकप्रिय हुआ, तब विवाह संस्कार को और अधिक मान्यता एवं पवित्रता प्राप्त हुई।क्योंकि बिना इसके व्यक्ति पित्र ऋण से मुक्त नहीं हो सकता था। पश्चात संस्कृतियों में विवाह को जहां एक संविदा माना जाता है ,वही हिंदू संस्कृति में इसे कभी भी समाप्त ना होने वाला संस्था माना गया है इसका आदर्श मात्र यौन सुख प्राप्त करने ,से कहीं बढ़कर था।इसके माध्यम से व्यक्ति अपना तथा साथ ही साथ समाज का भी पूर्ण एवं सम्यक विकास करता है। इस प्रकार विवाह को एक अनिवार्य संस्कार बताया गया है। जिसे संपन्न करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए धार्मिक और सामाजिक बाध्यता थी।सभी वर्गों के लिए इसे करना आवश्यक माना गया। याज्ञवल्क्य ने स्पष्टतः लिखा है ब्राह्मण ,क्षत्रिय ,वैश्य, शूद्र कोई भी हो यदि वह अविवाहित है तो कर्म के योग्य नहीं है।इसलिए शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि पत्नी निश्चय ही पति का आधा अंश है ; अतः जब तक पुरुष पत्नी प्राप्त नहीं करता , सन्तान नही उत्पन्न करता , तब तक वह पूर्ण नहीं होता ।

विवाह का उद्देश्य:-

हिंदू विवाह के तीन उद्देश्य कहे जा सकते हैं धर्म, प्रजा (संतान)और रति |पाणिनि के अनुसार पत्नी सभी पुण्य यज्ञ ,तीर्थ, देवता आदि की मूल बताई गई है। ब्रह्म पुराण में तो यहां तक कहा गया है कि ब्रह्मा ने अपने शरीर को दो भागों में बांटा है पूर्वार्ध पत्नी क्योंकि यज्ञ बिना पत्नी के नहीं हो सकता और उत्तरार्ध पुरुष। इस प्रकार शास्त्रीय धर्म के लिए पत्नी अनिवार्य है पर लौकिक धर्म के लिए भी उसका उतना ही महत्व हैगृहस्थ धर्म के पालन करने तथा ऋणों से उऋण होने के लिए भी पत्नी अत्याज्य है । विवाह का दूसरा प्रमुख उद्देश्य था पुत्र उत्पत्ति तैतरीय ब्राह्मण में पुत्र को दूसरा लोक बनाने वाला कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में पुत्र हीन को उत्तम लोक से वंचित बताया गया है तथा ऋग्वेद में अभिशाप के रूप में कहा गया है। विवाह का तृतीय उद्देश्य रति था जो अलौकिक उद्देश्य मात्र था,जिससे पुत्र प्राप्त किया जा सके।

विवाह संबंध के उद्भव के कारण

विवाह, समाज में मान्यता प्राप्त वह प्रथा या नियम है जिसके अनुसार स्त्री - पुरुषों के रति सम्बन्धों को नियमित किया की जाता है। स्त्री, पुरुष के बीच विवाह संबंध का विकास केवल यौन प्रवृत्ति के कारण ही नहीं होता। विवाह के मूल में नवजात शिशु तथा उसकी माता की असहाय अवस्था थी, जिसमें उनकी रक्षा तथा भोजन व्यवस्था आवश्यक थी। प्रसवावस्था के कठिन समय में अपने एवं अपने असहाय शिशु के समुचित संरक्षण की भावना ने उसे जीवन का स्थायी सहयोगी चुनने को प्रेरित किया। इस समय उसने बड़ी सतर्कता से अपने सहयोगी की योग्यता, क्षमता एवं सामर्थ्य का विचार किया। पारस्परिक आकर्षण, प्रेम आदि के कारण भी ,इस संबंध के मूल में विद्यमान थे। अतः स्पष्ट है कि पुत्र के लिए कामना, शिशु और पत्नी की रक्षा तथा गृहस्थ जीवन की आवश्यकता ने विवाह-बंधन को जन्म दिया। गृहस्थ जीवन के निर्माण हेतु विवाह संबंध पारस्परिक आकर्षण व प्रेम से निर्मित एक स्थायी आधार प्रदान करना है

विवाह:- एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

a)पूर्व वैदिक काल में विवाह की स्थिति:-

पूर्व वैदिक युग में विवाह संस्था की अनिवार्यता स्थापित नहीं हुई थी,परन्तु विवाह केवल सामाजिक,धार्मिक कर्तव्य एवं आवश्यक माना जाता था ।ऋग्वेद के अनुसार विवाह का उद्देश्य गृहस्थ होकर कर देवों के लिए यज्ञ तथा संतानोत्पत्ति करना था।ऋग्वेद में" जायेदत्तम्" अर्थात् पत्नी गृह है, कहकर उसके महत्व को स्पष्ट स्वीकार किया गया है ।परिवार में एक पत्नीत्व विवाह की मान्यता प्रचलित थी। यद्यपि कुलीन वर्ग में कुछ लोग कई पत्नियां रखते थे। बाल विवाह नहीं होते थे। विवाह में कन्या अपना मत दे सकती थी तथा कभी-कभी अपने पतियों का चुनाव स्वयं करती थी। भाई-बहन तथा पिता -पुत्री का विवाह वर्जित था। अंतर्जातीय विवाह होते थे। परंतु आर्य वर्ण का दास

वर्ण के साथ विवाह निषेध था ।कन्या की विदाई के समय उपहार तथा द्रव्य दिए जाते थे जैसे" वहतु "कहते थे ।विधिवत संपन्न हुए विवाह को स्त्री पुरुष किसी भी कारण से समाप्त नहीं कर सकते थे। पुनर्विवाह प्रचलित थे। विवाह का मुख्य उद्देश्य पुत्र की प्राप्ति करना था। पितृसत्तात्मक समाज में पुत्रों का महत्व अधिक होना स्वभाविक था ।पुत्र , पिता की अंत्येष्टि संस्कार संपन्न कर सकता था। नि:संतान व्यक्ति समाज निकृष्ट दृष्टि से देखा जाता था ।समाज में सती प्रथा के प्रचलित होने का उदाहरण नहीं मिलता। नियोग प्रथा के प्रचलन का संकेत प्राप्त होते है।

b)उत्तर वैदिक काल में विवाह की स्थिति

उत्तर वैदिक काल में आश्रम व्यवस्था के विकास से भी विवाह का महत्व बढ़ गया ।ऐतरेय ब्राह्मण में भी स्त्री को" जाया" कहा गया है, क्योंकि पति ने पत्नी के गर्भ में पुत्र के समान जन्म लिया। ऐसा माना जाने लगा कि समाज के लिए गृहस्थ उतना ही आवश्यक है जितना शरीर के लिए श्वास होती है।

c)सूत्र काल तथा महाकाव्य काल

सामान्यत: सातवीं या छठी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक का समय सूत्र काल कहा जाता है ।सूत्र काल में विवाह के 8 प्रकारों ब्रह्म,देव ,आर्ष, प्रजापत्य, गांधर्व, असुर, राक्षस तथा पैशाच का उल्लेख आश्वलायन ग्रह सूत्र में मिलता है ।इस समय बहु विवाह का प्रचलन था। सती प्रथा का प्रचलन नहीं था। विधवा का अपने पति की संपत्ति पर अधिकार माना गया है। विवाह को एक पवित्र बंधन माना गया है। वशिष्ठ धर्मसूत्र कुछ परिस्थितियों में स्त्री के पुनर्विवाह का विधान करता है परंतु इस समय स्त्रियों की दशा वैदिक काल की अपेक्षा हीन थी ।उनकी स्वतंत्रता का विरोध किया गया है। परंतु सूत्र कारों का नारी के प्रति दृष्टिकोण परिवर्ती स्मृतिकारो की अपेक्षा अधिक उदारता था। कन्या को यह अधिकार प्राप्त था कि यौवनास्था प्राप्त करने के बाद यदि कन्या का पिता उसका विवाह नहीं करता है। तो तीन माह प्रतीक्षा करने के पश्चात वह स्वयं विवाह कर सकती थी। महाकाव्य काल में समाज में बहु विवाह तथा अंतरजातीय विवाह का प्रचलन था। उच्च कुल के लोग अनेक पत्नियां रखते थे। क्षत्रिय कुलों में विवाह स्वयंवर प्रथा द्वारा होते थे। नियोग प्रथा भी प्रचलित थी जिसमें पति के नपुंसक तथा रुग्ण होने पर पत्नी पर पुरुष के साथ संतानोत्पत्ति हेतु संपर्क कर सकती थी। महाभारत में सती प्रथा के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं जैसे माद्री अपने पति पांडु के साथ सती हो गई थी ।किंतु कई उदाहरण हैं ऐसे भी हैं जहां स्त्रियों ने अपने पति की मृत्यु के बाद सतीत्व का अनुसरण नहीं किया ।अभिमन्यु ,घटोत्कच ,द्रोण की पत्नियां सती नहीं हुई । ऐसा प्रतीत होता है कि शक् -सीथियनो के आक्रमणों के फल स्वरुप समाज में सती प्रथा का प्रचार धीरे-धीरे बढ़ने लगा था। कहीं कहीं पर्दा प्रथा के उदाहरण भी मिलते हैं इस पर भी विदेशी आक्रमण का ही प्रभाव था।

d)प्राक् मौर्य काल में विवाह का स्वरूप

बौद्ध साहित्य मे छः प्रकार के विवाहों का उल्लेख है--ब्राह्य, प्राजापत्य,आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच | सामान्यतया, विवाह प्राजापत्य पद्धति से होता था। परम्परागत प्रथा के अनुसार समान जाति के कुलों मे माता-पिता की इच्छानुसार विवाह-सम्बन्ध स्थापित किया जाता था । परन्तु स्वयंवर तथा गान्धर्व-विवाहों के भी अनेक उदाहरण बौद्ध साहित्य मे मिलते हैं, और उन्हें भी धर्मानुकूल माना जाता था ।इसी प्रकार अवन्ति के राजा चण्ड प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता (वासुलदत्ता) का उदयन के साथ विवाह भी गान्धर्व-विवाह का प्रसिद्ध उदाहरण हैसामान्यतया, विवाह समान जाति और कुल मे होते थेजाति का बन्धन बौद्धकाल तक भी बहुत रूढ़ नहीं हुआ था | जाति के बाहर विवाह भी उस समय मे प्रचलित थे ।कन्याओं का विवाह सामान्यतया सोलह वर्ष की आयु मे किया जाता था । बाल-विवाह की प्रथा उस समय प्रचलित नहीं थी ।बौद्ध काल के विवाहों मे दहेज की प्रथा भी प्रचलित थी | बहुविवाह की प्रथा भी प्रचलित थी |बहुपत्नी विवाह के समान ही बहुपति-विवाह का भी दृष्टान्त बौद्ध साहित्य में मिलता हैविवाह के लिए मुहुर्त देखने की पद्धति बौद्ध काल में भी प्रचलित थी ।

e)मौर्य युग में विवाह-संस्था का स्वरूप

मौर्य युग में विवाह-संस्था के स्वरूप पर कौटिल्य के अर्थशास्त्र से बहुत अच्छा परिचय मिलता है। अर्थशास्त्र में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया गया है ब्राह्म , देव ,प्रजापत्य ,आर्ष, आसुर,गांधर्व, राक्षस ,पैशाच विवाहायद्यपि 'आसुर' ही एकमात्र इस प्रकार का विवाह था, जिसमे शुल्क की मात्रा पहले से ही निर्धारित कर ली जाती थी, पर अन्य प्रकार के विवाहों से भी कुछ शुल्क प्रदान करने की प्रथा विद्यमान थी। इस धन पर स्त्री का अधिकार माना जाता था, और कौटिल्य अर्थशास्त्र में इसी को '"स्त्रीधन' की संज्ञा दी गई है, पुनर्विवाह की प्रथा भी मौर्य काल मे प्रचलित थी। पुरुष और स्त्री---दोनों को ही पुनर्विवाह का अधिकार था।मौर्य युग में विवाह संबंध विच्छेद(तलाक)की प्रथा भी विद्यमान थी। स्त्री और पुरुष दोनो को ही तलाक का अधिकार प्राप्त था।मौर्य युग में ऐसी विधवाओं भी थी, जो पुनर्विवाह न करके स्वतन्त्र रूप से जीवन बिताया करती थीं। कौटिल्य ने ऐसी स्त्रियों को 'छन्दवासिनी (स्वतन्त्र रूप से रहनेवाली) विधवा" कहा है । कुलीन परिवारों में बहु विवाह की प्रथा थी समाज में अंतरजातीय विवाह का भी प्रचलन था अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह प्रचलित थे । चंद्रगुप्त मौर्य का यूनानी कन्या के साथ विवाह हिंदू समाज में एक क्रांतिकारी कदम था। स्त्री 12 वर्ष की आयु मे 'प्राप्तव्यवहार' (वयस्क या बालिग) हो जाती है, और पुरुष 16 वर्ष की आयु में । संभवतः, इस आयु से पूर्व स्त्री व पुरुष को विवाह करने की अनुमति नहीं दी जाती थी।

f)मौर्योत्तर युग में विवाह-संस्था

कौटिल्य के अर्थशास्त्र के समान स्मृतिग्रन्थों, पुराणों, महाभारत तथा धर्मसूत्रों में भी ब्राह्म, दैव,आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच,इन आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख है । मौर्योत्तर युग में बाल्यावस्था में ही कन्याओं का विवाह कर देने की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो गई थी |याज्ञवल्क्य स्मृति में तो यहाँ तक कहा गया है कि रजोदर्शन के पश्चात कन्या जिस समय तक अविवाहित रहती है, उतने समय तक उसके माता-पिता को भ्रूणहत्या का पाप लगता है।

g)गुप्त युग में विवाह संस्था

गुप्त युग में सजातीय विवाह होते थे परंतु ऐसे उदाहरण भी देखने को प्राप्त होते हैं कि जहां पर अनुलोम विवाह किया गया हो स्मृति ग्रंथों में इसकी मान्यता थी। नारद एवं पाराशर स्मृतियों में विधवा विवाह का भी समर्थन प्राप्त होता है। गुप्त युग में आठ प्रकार के विवाह प्रचलित थे। गुप्त युग में कन्याओं का विवाह 12 से 13 वर्ष की आयु में होता था। उनका उपनयन संस्कार बंद हो चुका था। याज्ञवल्क्य स्मृति में कन्या के लिए उपनयन व वेद आरंभ निषिद्ध बताया गया है। यवन ,शक, कुषाण, हूण आदि विदेशी आक्रमणों का प्रभाव के कारण स्त्री के विवाह की आयु क्रमशः कम होती गई तथा उस पर कई प्रकार के प्रतिबंध लगा दिए गए।

h)गुप्तोत्तर युग में विवाह संस्था

इस काल में विवाह की आयु अत्यंत कम हो गई इस काल में स्मृति के अनुसार स्त्री का विवाह 8 से 10 वर्ष की आयु तक हो जाना चाहिए। आदर्श विवाह 8 वर्ष का माना जाता था। 8 वर्ष की लड़की को गौरी कहा गया है ।10 वर्ष की लड़की को कन्या कहा जाता था। अधिक से अधिक कन्यावस्था में लड़की का विवाह हो जाना चाहिए ।बाल विवाह का स्त्रियों के शिक्षा पर भी प्रभाव पड़ा। रक्त शुद्धि की भावना से प्रेरित होकर अंतर्जातीय विवाह को हतोत्साहित किया गया ।विवाह संबंध निषेध भी कट्टर हो गए ।इस काल में भी आठ प्रकार के विवाह का उल्लेख मिलता है। परंतु विधवा, पुनर्विवाह निषेध हुये।

i)आठवीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक विवाह संस्था

इस काल में जाति व्यवस्था की कठोरता ने अंतरजातीय विवाह पर प्रतिबंध लगा दिया गया। बाल विवाह, बहुविवाह, सती और जौहर प्रथा इत्यादि ने स्त्रियों की स्थिति को दयनीय बना दिया। विधवाओं के संबंध में भी अनेक प्रतिबंध लगा दिए गए ।सजातीय विवाहों को ही अधिक

महत्व प्रदान की गई। इस युग में विवाह की आयु और कम कर दी गई तथा 8 से लेकर 10 वर्ष की आयु के कन्या के विवाह को उपयुक्त माना गया। विधवा विवाह बंद हो गए तथा सती प्रथा का राजपूत काल में विशेष प्रचलन हो गया। राजपूत वंश में कन्याओं का विवाह 14 तथा 15 वर्ष की आयु में होता था। अशासकीय परिवारों में कन्या का विवाह अल्पायु में ही होता था ।12वीं शती तक कुलीन परिवार के कुछ कन्या एवं साहित्य की शिक्षा ग्रहण करती थी। बहु विवाह का प्रचलन सामान्य हो गया बाल विधवाओं की संख्या समाज में बढ़ गई क्योंकि 1000 ईसवी के बाद किसी भी संभ्रांत कुल की विधवा अपना पुनर्विवाह नहीं कर सकती थी। आठवीं शताब्दी तक समाज में विधवाओं के मुंडन की कथा भी प्रचलित हो गई|

हिंदू विवाह का स्वरूप :-विवाह एक धार्मिक संस्कार है **(Hindu Marriage is a Sacrament)**

1) इस विवाह पद्धति के अन्तर्गत कुछ ऐसे धार्मिक नियम तरीके या धार्मिक कृत्य होते है जिनका सम्पादित किया जाना विवाह की पूर्णतया के लिये आवश्यक है । इन धार्मिक कृत्यों में होम , पाणिग्रहण और सप्तपदी प्रमुख है । अग्नि मे मन्त्र पाठ के साथ लाजाओं अथवा लाई का होम किया जाता है । स्मरण रहे कि होम अग्नि को दिया जाता है और अग्नि को भगवान् या देवता माना जाता है । अतः हिन्दू - विवाह एक धार्मिक संस्कार है ।

2)अपने जीवन में हिंदू पुरुष अनेक संस्कारों को संपादित करते हुए आगे बढ़ता है। यह गर्भाधान संस्कार से आरंभ होता है और शरीर के दाह संस्कार में समाप्त होता है । परन्तु हिंदू स्त्रियों के लिये इस प्रकार के विविध संस्कारों की व्यवस्था या निर्देश नहीं है ; उनके लिये केवल एक संस्कार करने का निर्देश हैं।

3) हिंदू विवाह में अंतर्निहित यह भावना है कि विवाह ईश्वरीय आदेशानुसार अविच्छेद है,यह इस बात का प्रमाण है कि हिंदू विवाह एक धार्मिक संस्कार है।

4)हिंदू विवाह एक धार्मिक संस्कार है ।इसे दर्शाने के लिए ही हिंदू पत्नी को धर्मपत्नी सहधर्मिणी कहां जाता है। विवाह के द्वारा ही पुत्र प्राप्ति होते हैं और उससे पुत्र यज्ञ पूरा होता है लड़का पितरों को तर्पण या पिंड दान देकर पुत्र यज्ञ को संपादित करता है।

हिन्दू - विवाह के परम्परागत स्वरूप **Traditional Forms of Hindu Marriage**

विभिन्न स्मृतिकारों ने हिन्दू विवाह के भेदों की अलग - अलग संस्थाओं का उल्लेख किया है उदाहरणार्थ वशिष्ठ केवल छ :प्रकार के विवाह मानते हैं जबकि मनु ने हिन्दू विवाह के आठ प्रकार का उल्लेख किया है । स्मृति कारों की विवाह संबंधी व्यवस्था किसी एक काल, जाति अथवा स्थान पर आधारित नहीं है ।समय-समय पर विभिन्न मनुष्यों ने भिन्न-भिन्न स्थानों पर अपनी आवश्यकता के अनुकूल जो विवाह पद्धतियाँ निर्मित की हैं। उसके फलस्वरुप स्मृतियों ने विवाह के इन 8 प्रकारों को दो भागों में विभक्त कर दिया ।

1)प्रथम प्रशस्त विवाह :-ब्राह्म , देव ,प्रजापत्य ,आर्ष विवाह

2)द्वितीय अप्रशस्त विवाह :- आसुर,गांधर्व, राक्षस ,पैशाच विवाह

प्रशस्त व्यवहार धार्मिक दृष्टि से श्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि सप्तपदी की धार्मिक प्रक्रिया के पश्चात वधू के गोत्र में परिवर्तन हो जाता है और वह पति का गोत्र स्वीकार कर लेती है परंतु अब प्रशस्त विवाहों में वधू अपने गोत्र को छोड़कर पति के गोत्र को नहीं अपनाती थी।

1 ब्राह्म विवाह - वर - कन्या दोनों यथाविधि ब्रह्मचर्य से पूर्ण , विद्वान , धार्मिक और सुशील हो , उनका परस्पर प्रसन्नता से विवाह होना ब्राह्म विवाह कहलाता है । इस प्रकार विवाह में कन्या के माता - पिता अपनी खुशी से एक विद्वान और योग्य वर को अपनी कन्या के लिये चुनते है । उसे अपने घर पर आमन्त्रित करते है और कन्या को वस्त्र , अलंकार आदि से सुसज्जित करके उस दर को दान करते है ।

2 देव विवाह :-इस प्रकार के विवाह में कन्या के पिता एक यज्ञ की व्यवस्था करते है और वस्तु तथा अलंकार से सुसज्जित कन्या का दान उस व्यक्ति को किया जाता है जो उस यज्ञ को उचित ढंग से पूरा करता है। संक्षेप में विस्तृत यज्ञ करने में कुशल पुरोहित को अलंकारयुक्त कन्या को देना ही देव विवाह है। इस विवाह का प्रचलन प्राचीनकाल में अधिक था , क्योंकि उस समय यज्ञ का बहुत महत्व था। वैदिक यज्ञों के साथ देव विवाह विलुप्त हो गए।

3. आर्ष विवाह आर्ष विवाह का सम्बन्ध ' ऋषि ' शब्द से है। बौद्धिक तथा आध्यात्मिक शक्ति व चरित्र के लिये ऋषियों का आदर किया जाता था और उनमें ऐसी बुद्धिमान सन्तति की उत्पत्ति की आशा की जाती थी जोकि परिवार तथा समाज के गौरव व गर्व की वस्तु होगी। इसीलिए ऐसे ऋषियों से अपनी कन्या का विवाह कर देने को सभी माता - पिता अत्यधिक इच्छुक रहते थे। परन्तु चूंकि ऋषि लोग प्रायः विवाह के सम्बन्ध में उदासीन हुआ करते थे इसलिए विवाह करने को इच्छुक ऋषि को अपने भावी ससुर को एक गाय अथवा एक बैल अथवा इनके दो जोड़े देने पड़ते थे ताकि या प्रमाणित हो जाये कि ऋषि ने अब विवाह बन्धन को स्वीकार कर लिया है। उसे कन्या - मूल्य न समझना चाहिए। इस प्रकार की भेंट लेकर कन्या के माता - पिता कन्या को ऋषि की पत्नी के रूप में सौंप देते व है। और उन दोनों को इसके पश्चात् पवित्र गृहस्थ धर्म निर्वाह करने का अवसर प्रदान करते हैं। मेगस्थनीज ने भी भारत के विवाह के अवसर पर एक गाय और एक बेल दान में दिए जाने का उल्लेख होता है तो सिद्ध होता है कि चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में आर्ष विवाह प्रचलित था।

(4)प्राजापत्य विवाह - वर और वधू को वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध में उपदेश देकर और " तुम दोनों मिलकर गृहस्थ धर्म का पालन करना और तुम दोनों का जीवन सुखी एवं समृद्धिशाली हो यह कहकर विधिवत् वर की पूजा करके कन्या का दान ही प्राजापत्य विवाह है। ' सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि वर और वधू दोनों का विवाह धर्म की वृद्धि के लिए हो यह कामना ही ' प्राजापत्य ' का आधार है। इस प्रकार ब्राह्म और प्राजापत्य विवाह में कोई विशेष अन्तर नहीं है

(5.) आसुर विवाह - आसुर विवाह में विवाह के लिए इच्छुक व्यक्ति को कन्या के पिता या अभिभावक को कन्या - मूल्य चुकाना पड़ता है। इसके अनुसार कन्या का कुछ मूल्य पहले ही निश्चित हो जाता है। इस मूल्य की कोई सीमा नहीं होती। प्रायः यह कन्या के गुण और परिवार के आधार पर निश्चित होता है।ऊपरी तौर पर ऐसा लगता है कि आर्ष विवाह व आसुरी विवाह एकसमान है क्योंकि दोनों में ही वर पक्ष कन्या पक्ष को कुछ - न - कुछ वस्त्र या धन देता है। परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। सच यह है कि दोनों ही प्रकार के विवाह में वर पक्ष कुछ वस्तु या धन देता है , पर इस देने के उद्देश्य तथा आधार में भारी अन्तर है। आर्ष विवाह में जो गाय और बैल दिया जाता है वह कन्या मूल्य नहीं है बल्कि केवल इस बात का प्रमाण है कि ऋषि विवाह करने को इच्छुक है और जो कुछ वह अपने भावी ससुर को दे रहे है वह ऋषि कृतज्ञता का प्रतीक है , परन्तु आसुर विवाह में जो कुछ भी दिया जाता है वह वास्तव में कन्या मूल्य ही होता है और उसे चुकाये बिना विवाह नहीं हो सकता। साथ ही यह कन्या मूल्य. आर्ष विवाह की तरह निश्चित भी नहीं होता और यह कन्या के गुण और परिवार के आधार पर ज्यादा या कम हो सकता है। परन्तु आर्ष विवाह में कन्या के माता - पिता को निश्चित रूप में एक गाय और बैल अथवा दो जोड़े गाय या बैल मिलते है। इन मौलिक भिन्नताओं के कारण ही इन दोनों विवाहों के दो भिन्न नाम और विवाह के दो भिन्न प्रकार स्वीकार किये गये है। उच्च जाति के हिन्दुओं में आसुर विवाह बहुत ही खराब समझा जाता है। निम्न जाति के लोगों में और जनजातियों में इसका विशेष प्रचलन है।

6. गन्धर्व विवाह - इस विवाह को प्रणय विवाह भी कहा जाता है मनु के अनुसार जब कन्या व वर कामुकता से वशीभूत होकर संयोग पूर्वक करते हैं।तो विवाह के इस प्रकार को गांधर्व कहते हैं। इसका नाम गंधर्व पड़ा क्योंकि यह हिमालय की तराई में रहने वाले गंधर्व जाति में विशेष रूप से प्रचलित था।यह विवाह कन्या और वर के परस्पर प्रेम के फलस्वरूप और उनकी इच्छा के अनुसार होता है तथा वे बिना अपने माता - पिता की अनुमति के बिना ही एक - दूसरे को पति और पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। ऋग्वेद में उत्सवों और समारोह

का उल्लेख है जिसमें कन्याएं अपना पति स्वयं ढूंढ लेते थी ।बौद्ध साहित्य एवं जैन साहित्य में भी गंधर्व विवाह के उदाहरण प्राप्त होते हैं ।महाभारत में उल्लेखित शकुंतला दुष्यंत का विवाह सर्वविदित उदाहरण

7. राक्षस विवाह :- विवाह का प्राचीन प्रकार था जो आदिम जनों में प्रचलित था इसमें कन्या को बलपूर्वक हरण कर कर ले जाया जाता था इस विवाह का नाम राक्षस रखा गया क्योंकि राक्षसी इस प्रकार से क्रूर व कठोर उपायों का प्रयोग करते थे । यह विवाह उस समय अधिक होता था जब युद्ध का महत्व अधिक था और स्त्रियों को युद्ध में विजय पाकर प्राप्त करना गौरवपूर्ण माना जाता था। चूंकि युद्ध में प्रत्यक्ष सम्पर्क क्षत्रियों का था इस कारण इस प्रकार का विवाह विशेष रूप से क्षत्रियों के लिये था। इसलिए इसे ' क्षात्र - विवाह ' भी करते है |महाभारत से पता चलता है कि भीष्म ने काशी के राजा को पराजित कर उसकी पुत्री अंबा को अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य की वधू बनाकर ले गया। सुभद्रा से अर्जुन ने भी अपरहण विवाह किया। श्री कृष्ण ने रुक्मणी के साथ विवाह में इसी सिद्धांत का अनुकरण किया

8. पैचाश विवाह - जब निद्रित , शराब आदि पी हुई या अन्य प्रकार के उन्मत स्त्री के साथ किसी - न - किसी प्रकार की जबरदस्ती या धोखा देकर यौन सम्बन्ध स्थापित कर लिया जाता है , और इस प्रकार की स्त्री का विवाह अन्य व्यक्ति के साथ सम्मान पूर्वक होना बड़ा दुर्लभ था केवल एक ही मार्ग था कि दोषी को विवाह के लिए बाध्य किया जाए उसे पेचाश विवाह कहते है। इस हेतु वशिष्ठ और आपस्तंब ने भी इस विवाह को मान्यता नहीं दी है।

विवाह हेतु आयु

वैदिक युग में कन्याओं का विवाह प्रौढ़ अवस्था में होता था ।,विवाह मंत्रों से पता चलता है कि अविवाहित लड़कियां शिशु या किशोरी नहीं प्रत्युत प्रौढ़ थी। गृह सूत्रों एवं धर्म सूत्रों के अनुशीलन से पता चलता है कि कन्याओं के युवावस्था के बिल्कुल निकट पहुंचने या उसके प्रारंभ होने के उपरांत ही विवाहित होती थी। कुछ ग्रंथों में वधू के लिए चुनी जाने वाली कन्या का एक लक्षण नग्निका कहा गया है।महाभारत में जिसका तात्पर्य **16** वर्ष की कन्या होता है बौद्ध साहित्य से भी पता चलता है कि चौथी सदी ईसा पूर्व तक कन्याओं का विवाह **16** वर्ष की आयु तक होता था विवाह के समय में पुणे युवा अवस्था में होती थी विशाखा और कुंडल केशा के संघ में प्रवेश करते समय **16** वर्ष की थी। जब उनके विवाह के बारे में विचार किया जा रहा था।घम्मपदटीका मे राजगृह के श्रेष्ठी की कन्या कुण्डलकेशी का उल्लेख श्राया है, जो सोलह वर्ष की भ्रायु तक अविवाहित रही थी । वहाँ यह भी लिखा है कि यही श्रायु है, जिसमें कि स्त्रियाँ विवाह के लिए इच्छुक होती हैं। सूत्र काल तक आते-आते स्त्रियों का उपनयन संस्कार बंद हो गया अब विवाह के अतिरिक्त उनसे संबंधित अन्य संस्कारों में वैदिक मंत्रों का उच्चारण नहीं होता था कन्या के विवाह की आयु भी घटा दी गई विवाह को ही उपनयन का विकल्प माना जाने लगा द्वितीय शती तक इसे पुणे तरह बंद कर दिया गया। कन्याओं का विवाह **9** से लेकर बार बा **12** वर्ष तक की आयु में किया जाने लगा।

बाल विवाह का आरंभ

ईसा पूर्व **400** के पश्चात कन्या का विवाह कम आयु में होने लगा वशिष्ठ और बौधायन के अनुसार यदि योग्य वर नहीं मिले तो लड़की को युवती हो जाने पर भी **3** वर्ष तक कुमारी रखा जा सकता है। मनु ने भी लिखा है कि एक युवती भले ही जीवन भर अपने पिता के घर में अविवाहित रह जाए पिता को चाहिए कि वह उसे सद्गुण विहीन व्यक्ति से विवाह न करें। परंतु कालांतर में कन्याओं का विवाह शीघ्र होने लगा बाल विवाह के आरंभ के कुछ विशेष कारण निम्नलिखित हैं

1. यवन ,शक आदि विदेशी जातियों के आक्रमण के परिणाम स्वरूप जो परिस्थितियां निर्मित हुई उन्हीं के परिणाम स्वरूप कन्याओं का विवाह शीघ्र ही किया जाने लगा।
2. कन्याओं का उपनयन संस्कार समाप्त हो जाना तथा उनके लिए अध्ययन आवश्यक नहीं समझा जाने लगा।
3. पूर्वजों के तर्पण हेतु पत्र की आवश्यकता शीघ्र ही व्यवहार करने से पुत्र की प्राप्ति भी तुरंत हो जावेगी

4. समाज में जाति व्यवस्था के कठोर होने के कारण कन्या के हेतु योग्य वर मिलना कठिन हो रहा था।
5. सती प्रथा के कारण बाल विवाह को बल मिला
6. संयुक्त परिवार प्रणाली भी बाल विवाह के पक्ष में सिद्ध हुई
7. कन्या को संघ में प्रवेश लेने की संभावना से बचाने हेतु शीघ्र विवाह कर दिया जाता था
8. कन्या को एक बहुमूल्य वस्तु के रूप में देखा जाने लगा उसकी सुरक्षा के हेतु इस प्रकार के कदम उठाए गए l

ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर तीसरी शताब्दी ईस्वी तक का समय उत्तरी भारत में विदेशी आक्रमणों का काल रहा जिससे बात समाज में भारी अव्यवस्था फैल गई इसने स्त्रियों की स्थिति को प्रभावित किया| नियुक्त तथा पुनर्विवाह की प्रथा बंद हो गई |स्त्रियों के लिए पुनर्विवाह करने के स्थान पर संन्यास द्वारा मोक्ष प्राप्त कर लेने के सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया समाज में सती प्रथा का भी प्रचलन हो गया और इसे एक महान धार्मिक यज्ञ बताया गया इससे स्त्रियों की दशा और खराब हो गई |

विवाह के अन्य प्रकार

सवर्ण तथा अंतर्वर्ण विवाह:-

प्राचीन हिंदू विवाह में सवर्ण(endogamy) तथा अंतर्वर्ण(exogamy) विवाह का भी प्रचलन था ।धर्म शास्त्रों की मान्यता है कि व्यक्ति को अपने ही वर्ण या जाति में व्यवहार करना चाहिए ।इससे अलौकिक यश की प्राप्ति होती है तथा अच्छी संतान उत्पन्न होती है ।समान गोत्र, प्रवर तथा पिंड में विवाह करना वर्जित था

अंतरजातीय विवाह:-

प्राचीन भारत में अंतरजातीय विवाह प्रचलित है ।इसे हम दो भागों में रख सकते हैं ।प्रथम अनुलोम विवाह ,द्वितीय प्रतिलोम विवाह जब पुरुष अपने से नीचे के वर्ण के कन्या के साथ विवाह करता था तो वह अनुलोम विवाह कहलाता है तथा उच्च वर्ण की कन्या के साथ निम्न वर्ग के पुरुष का विवाह प्रतिलोम विवाह कहा जाता था। अनुलोम विवाह की अपेक्षा प्रतिलोम विवाह निंदनीय माना जाता था इस अनुलोम और प्रतिलोम विवाह से अनेक जातियां और उप जातियों की उत्पत्ति हुई। मनु और याज्ञवल्क्य ने उत्तराधिकार का निरूपण करते हुए बताया है कि सवर्ण स्त्री से उत्पन्न संतान को अनुलोम विवाह से उत्पन्न संतान की अपेक्षा संपत्ति में अधिक अंश प्राप्त होना चाहिए । प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न संतान को अत्यंत निकृष्ट माना जाता था । गौतम धर्मसूत्र में सूत, मागध, वैदेह और चांडाल को प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न बताया है।

10 वीं शताब्दी तक अंतरजातीय विवाह होते रहे परंतु कालांतर में इनका प्रचलन कम होते होते सदा के लिए लुप्त हो गया पहले द्विज जाति के लोगों में सांस्कृतिक अंतर इतना गहरा और अधिक नहीं था परंतु मुस्लिम आक्रमण से सांस्कृतिक सुरक्षा के लिए धार्मिक व जातीय कट्टरता बढ़ने लगी लोगों में संकीर्ण भावना की वृद्धि हुई जातियों में आपस में विवाह भोजन समाप्त हो गया कट्टरता और संकीर्ण भावना के कारणअंतरजातीय विवाह शनै:शनै: लुप्त हो गए।

प्राचीन भारत में स्वयंवर विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी । राजा जनक ने स्वयंवर द्वारा ही अपनी पुत्री सीता का विवाह किया था। नल और दमयन्ती का विवाह भी स्वयंवर द्वारा हुआ था | यह गान्धर्व विवाह का ही एक सुमर्यादित रूप था, जिसका आयोजन कन्या के माता-पिता द्वारा किया जाता था। गुप्त युग में विरचित रघुवंश मे इन्दुमती के स्वयंवर का बडे विशद रूप से वर्णन किया ग्रया है, जिससे सूचित होता है कि गुप्तकाल में भी यह प्रथा विद्यमान थी।

बहुपत्नीत्व तथा बहुपतित्व विवाह

हिंदू जीवन पद्धति में सामान्यतः एक विवाह की आदर्श रहा है जिसमें स्त्री के लिए एक ही पति और पुरुष के लिए एक ही पत्नी का विधान किया गया है ।आपस्तंब के अनुसार धर्म तथा प्रजा से संपन्न पत्नी के रहते हुए पुरुष को अपना दूसरा विवाह नहीं करना चाहिए किंतु हिंदूशास्त्रकार केवल विशेष परिस्थितियों में ही पुरुष द्वारा दूसरी पत्नी रखने की अनुमति देते हैं। मनु ने पुरुष द्वारा दूसरा विवाह करने के लिए निम्नलिखित शर्तें निर्धारित की है:- 1)यदि पत्नी वंध्या हो 2)यदि उसके बच्चे जीवित नहीं रहते हो 3)यदि उससे केवल कन्याएं ही उत्पन्न हो 4) यदि वह झगड़ालू प्रवृत्ति की हो।

हिंदू समाज में पत्नी के लिए एक ही पति को आदर्श तथा प्रशंसनीय बताया गया है बहुत तत्व को प्रचलन बहुत कम था। यह प्रथा प्राचीन जनजातियों में ही अधिक प्रचलित रही। महाभारत में द्रोपदी के पांच पतियों का उल्लेख है यद्यपि यह ग्रंथ इस प्रथा की निंदा करता है।

स्त्रियों का पुनर्विवाह

कतिपय विशेष दशाओं मे स्त्री को पुनर्विवाह करने की अनुमति भी धर्म शास्त्रों में प्रदान की गई है कौटिल्य अर्थशास्त्र की व्यवस्था को दृष्टि में रखते हुए मनु ने यह भी कहा है कि यदि पुरुष किसी धामिक कर्तव्यों के लिये विदेश गया हो, तो उसकी पत्नी को आठ साल तक प्रतीक्षा करती चाहिये। यदि ज्ञान व यश की प्राप्ति के प्रयोजन से पति विदेश गया हुआ हो तो छह वर्ष तक, भोर यदि प्रेम प्रतीक्षा के पश्चात् भी यदि पति वापस न आए, तो स्त्री को पुनर्विवाह कर लेना चाहिये, पर ऐसी दशा में स्त्रियों का पुनर्विवाह उन्हें स्वीकार था,नारद स्मृति मे यह भी कहा गया है कि यदि पति नष्ट (लापता) हो गया हो, मर गया हो, प्रत्रज्या ग्रहण कर ले, नपुंसक हो या पतित हो, तो इन पाँच दशाओ मे स्त्री अन्य पुरुष से विवाह कर सकती हैके वशीमृत होकर पति कही अन्यत्र चला गया हो ,तो तीन वर्ष तक पत्नी को प्रतीक्षा करनी चाहिये इतनी प्रतीक्षा के पश्चात् भी यदि पति वापस न आए, तो स्त्री को पुनर्विवाह कर लेना चाहिये, पर ऐसी दशा में स्त्रियों का पुनर्विवाह उन्हें स्वीकार था,नारद स्मृति मे यह भी कहा गया है कि यदि पति नष्ट (लापता) हो गया हो, मर गया हो, प्रत्रज्या ग्रहण कर ले, नपुंसक हो या पतित हो, तो इन पाँच दशाओ मे स्त्री अन्य पुरुष से विवाह कर सकती है। पुनर्विवाह करने वाली स्त्री के लिये प्राचीन ग्रन्थों मे "पुनर्भू' सज्ञा का प्रयोग किया गया हैस्त्रियाँ ऐसी भी थी, जो किसी अन्य पुरुष से विधिवत् विवाह न करके स्वेच्छाचार से किसी के साथ रहने लगती थी । इन्हे 'स्वैरिणी' कहा जाता था

संबंध विच्छेद अथवा तलाक

हिंदू विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार था ।जिसे सरलता पूर्वक समाप्त नहीं किया जा सकता था। प्राचीन समाजशास्त्री एवं विचारक कुछ अपरिहार्य परिस्थितियों में ही पति पत्नी के संबंध को तोड़ने की मान्यता प्रदान करते हैं ।बौधायन ने बंध्या, केवल कन्या उत्पन्न करने वाली तथा जिसकी संतान जीवित नहीं रहती हो ऐसी पत्नी को छोड़कर पुरुष को दूसरा विवाह करने का आदेश दिया था। किंतु इस दशा में उसे पहली पत्नी के निर्माण की पूरी व्यवस्था करनी होती थी स्त्री के व्यभिचारिणी होने पर भी उसका त्याग किया जा सकता था। पति के नपुंसक, प्रवासी ,राजद्रोही प्रतीत होने की स्थिति में पत्नी उसका परित्याग कर सकती थी।कौटिल्य के अनुसार यदि पति-पत्नी की में परस्परद्वेष होने की स्थिति में संबंध विच्छेद हो सकता है।

निष्कर्ष

विवाह प्रत्येक समाज चाहे वह आदिम समाज हो या सभ्य समाज की संस्कृति का एक आवश्यक अंग होता है क्योंकि यह एक साधन है ,जिसके आधार पर समाज की प्रारंभिक इकाई परिवार का निर्माण होता है विवाह की प्रकृति सनातन है विवाह का उद्देश्य धर्म कार्य, पुत्र प्राप्ति और रति के प्रयोजन को पूरा करना है विवाह एक धार्मिक संस्कार है ।वैधानिक या सामाजिक समझौता नहीं इसकी पूर्णता के लिए धार्मिक कृत्यों की भी आवश्यकता होती है। । पति पत्नी एक दूसरे से प्रेम करते हैं और दोनों ही मिलकर अपने समस्त स्नेह को संतानों को समर्पित करते हैं जिसके फलस्वरूप संतान का पालन पोषण होता है और परिवार व समाज की निरंतरता बनी रहती है । हिंदू विवाह का प्रथम उद्देश्य धार्मिक कर्तव्यों का पालन है इन ये वे धार्मिक कर्तव्य हैं, जो वह अपनी धर्मपत्नी या सहधर्मिणी के बिना पूर्ण नहीं कर सकता

विवाह पश्चात ,उसे पुत्र की प्राप्ति होती है जो उसे पित्र ऋण से मुक्त कराताहै ।भवभूति के द्वारा तो विवाह को आनंद की ग्रंथि बताया गया है और सामाजिक हित की दृष्टि से उसे एक धार्मिक कर्तव्य बताया है । विवाह ,परिवार व समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन और व्यक्तित्व के विकास में भी सहायक होता है ।विवाह के द्वारा ही परिवार का निर्माण संभव होता है l

संदर्भ

1)सहाय शिव स्वरूप, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स ,पुस्तक क्रमांक -4529 ,प्रकाशित वर्ष- 2004 आईएसबीएन 81 -208- 2384- 8

2)विद्यालंकार सत्यकेतु प्राचीन भारत का सामाजिक धार्मिक एवं आर्थिक जीवन श्री सदन सरस्वती सदन (मसूरी) ए 1/ 32 एंक्लेव ,सफदरजंग, नई दिल्ली 16

3)सिंह शरद ,प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

4)श्रीवास्तव के.सी., प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद प्रकाशन वर्ष 2021 22

5)शर्मा रामशरण,प्रारंभिक भारत का आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास , हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।

6)वेदालंकार हरिदत्त, विवाह का संक्षिप्त इतिहास ,पृष्ठ संख्या169

7)Das R.M., Women in Manu and seven commentators page no. 113- 114

8)पांडे राजबली, हिंदू संस्कार ,पृष्ठ संख्या 237

मिश्र जयशंकर ,प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

9)altekar A.S.,Position of women in Hindu civilization ,p .no.36

10)Jolly ,Hindu law and Customs page number 102

11) Sircar S.C., some aspects of the earliest social history of India, page number 141

12)Kane P.V., history of dharmasastra volume 2, part 1.

13)ललित विस्तार ,पृष्ठ संख्या 137।

IJCRT